अकथ कहानी: साहित्य और राजनीति की दुनिया का रोचक दस्तावेज

Pramod Ranjan

► To cite this version:

Pramod Ranjan. अकथ कहानी: साहित्य और राजनीति की दुनिया का रोचक दस्तावेज. 2024. ⟨hal-04478953⟩

HAL Id: hal-04478953
https://hal.science/hal-04478953

Preprint submitted on 3 Mar 2024

HAL is a multi-disciplinary open access archive for the deposit and dissemination of scientific research documents, whether they are published or not. The documents may come from teaching and research institutions in France or abroad, or from public or private research centers.

L'archive ouverte pluridisciplinaire **HAL**, est destinée au dépôt et à la diffusion de documents scientifiques de niveau recherche, publiés ou non, émanant des établissements d'enseignement et de recherche français ou étrangers, des laboratoires publics ou privés.

Distributed under a Creative Commons Attribution 4.0 International License

अकथ कहानी: साहित्य और राजनीति की दुनिया का रोचक दस्तावेज

प्रमोद रंजन

'अकथ कहानी' प्रेमकुमार मणि की आत्मकथा है। यह जितनी एक लेखक के जीवन की कहानी है, उससे अधिक उसके जीवन काल में परिवर्तित होते सामाजिक, राजनीतिक और साहित्यिक दुनिया की आत्मकथा है। लेखक इन परिवर्तनों का सिर्फ द्रष्टा नहीं है, बल्कि अनेक मामलों में सक्रिय भागीदार है, इसलिए यह आत्मकथा एक विश्वसनीय ऐतिहासिक दस्तावेज भी है।
लेखक का जीवन इसमें एक सूत्रधार की तरह उझकता है, लेकिन उसका जीवन इसकी मुख्य कथा नहीं है। लेखक ने अपनी जीवनगाथा के कुछ प्रासंगिक अंशों को इसमें गूंथा है, जो इसे एक प्रकार की निजता देता है और पाठक को बांधे रखने की एक नायाब युक्ति बन जाता है।

आत्मकथा का अच्छा-खासा हिस्सा बिहार की राजनीति में होने वाली उथल-पुथल पर केंद्रित है, जिसका मुख्य स्रोत उसकी अपनी राजनीतिक सक्रियता और मुख्यमंत्री नीतीश कुमार से मित्रता है। वे नीतीश की खूबियों की चर्चा करते हैं, साथ ही उनकी अवसरवादिता, ढुलमुल व्यक्तित्व और राजनीतिक मूर्खताओं को भी छिपाते नहीं। लालू प्रसाद से भी उनका निजी परिचय रहा है। इसमें लालू प्रसाद के उत्थान और पतन का भी आंखों देखा हाल है। इस मायने में यह ऐसी

किताब भी है, जिसमें बिहार की तत्कालीन राजनीति के कई अनछुए पहलू सामने आए हैं।

प्रेमकुमार मणि का जन्म 1953 में बिहार के एक किसान परिवार में हुआ। कालखंड के हिसाब से देखें तो यह आत्मकथा 1960 के दशक से 21वीं सदी के पहले दशक, यानी लगभग 50 सालों की कहानी है। मणि ने इसे 2013 में लिखा था, जब वे अपने जीवन के साठ साल पूरा करने जा रहे थे। लेकिन उन्होंने अगले दस वर्ष तक संकोचवश इसे प्रकाशित नहीं करवाया। मित्रों के दबाव में अंतत: यह 2023 में प्रकाशित हुई।

स्वभाविक तौर पर इस आत्मकथा के केंद्र में उनकी जन्म-कर्म भूमि बिहार है। लेकिन जब आप इसमें उतरते हैं तो पाते हैं कि यह सिर्फ उन 50 सालों तक सीमित नहीं है, न ही सिर्फ बिहार तक, बल्कि लोकायत, बुद्ध, कबीर और स्वतंत्रता आंदोलन के दौर से लेकर नक्सलबाड़ी, मंडल व मंदिर आंदोलन से लेकर प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह के कार्यकाल के अंतिम वर्ष तक के भारत को समझने का एक स्पष्ट नजरिया देती है।

मणि ने जवाहरलाल नेहरू के भारत में आखें खोलीं। उनके पिता एक समय में तेलांगना किसान आंदोलन (1946-51) में शामिल हुए थे। पिता सुभाष चंद्र बोस के फारवर्ड ब्लॉक में भी रहे, लेकिन कालांतर में कांग्रेस की राजनीति में शामिल

हो गए।

मणि बताते हैं कि *'मेरे माता-पिता कोई बड़े आदमी नहीं थे। मतलब ऐसे परिवार से नहीं आते थे, जिनके परिवार खानदान का कोई अपना विशिष्ट इतिहास था, जिस पर वे गर्व करते या जिसकी चर्चा वे अपने बच्चों से करते। वे सर्वहारा समाज के लोग थे।'*[1]

दो अलग-अलग पिछड़ी जातियों से आने वाले उनके माता-पिता वाल्मीकि मणि और कामिनी देवी ने प्रेम विवाह किया था। उस जमाने (1950 के दशक में) के बिहारी समाज में इसे सामाजिक और पुरोहिती अनुमोदन मिलना लगभग असंभव था और यही हुआ भी। मणि का जन्म उनके मामा के घर हुआ था। जन्म के बाद उन्हें उनकी मां की गोद से छीन लिया गया और एक मामा को नवजात को फेंक आने की जिम्मेदारी दी गई। लेकिन मामा को दया आ गई और वे उन्हें एक कुंए के किनारे चुपके से रखकर गायब हो गए।

उनकी मां किसी तरह उन्हें लेकर राजनीतिक कार्यकर्ता पति के पार्टी दफ्तर पहुंची। वहीं पार्टी दफ्तर में ही उनके जन्म का जश्न मनाया गया और वहीं उनका नामकरण भी हुआ। इस प्रकार, मणि की जिंदगी की शुरुआत ही

---

[1] प्रेमकुमार मणि (2023), 'अकथ कहानी', वाणी प्रकाशन, दिल्ली, पृ. 12

राजनीति के क्रोड़ में हुई।

मणि जी को जानने वाले जानते हैं कि वे सिर्फ साहित्यिक दुनिया के वासी नहीं हैं, बल्कि सक्रिय राजनीति में भी उनका मन रमता है। वे पहले कम्युनिस्ट पार्टी में रहे, फिर समता पार्टी-जदयू में और कुछ समय तक लालू प्रसाद के राष्ट्रीय जनतादल में। एक दौर में लेखक संघों की राजनीति में भी सक्रिय रहे। मणि एक साक्षात्कारकर्ता के पूछने पर मजाक में कहते भी हैं कि "गालिब जुआ खेलते थे, मैं राजनीति खेलता हूं।[2]"

उनके पिता की स्थिति आर्थिक तौर पर हमेशा कमजोर ही रही, लेकिन मेधा और कतर्व्यनिष्ठा के कारण उनकी सामाजिक-राजनीतिक पहचान प्रभावशाली कही जा सकने वाली थी। बिहार के मुख्यमंत्री रहे कर्पूरी ठाकुर, कृष्णवल्लभ सहाय समेत जगदेव प्रसाद व अन्य राजनेताओं का उनके घर आना-जाना रहा। तत्कालीन बिहार के अनेक लेखकों से भी उनकी अच्छी मित्रता थी। प्रेमकुमार मणि को यह थाती हासिल हुई।

मणि अपने जीवन के आरंभ में जिस राजनीतिक घटना से सबसे पहले रूबरू हुए, वह पंडित जवाहरलाल नेहरू का निधन और उसके बाद लालबहादुर शास्त्री

---

[2] प्रेमकुमार मणि (2023), 'अकथ कहानी', वाणी प्रकाशन, दिल्ली, पृ. 240

के प्रधानमंत्री बनने का घटनाक्रम था। आत्मकथा में वे उन परिस्थितियों का वर्णन करते हैं कि जिनमें लालबहादुर शास्त्री भारत के नए प्रधानमंत्री चुने गए। उनका प्रधानमंत्री बनना ब्राह्मण और कायस्थ लॉबी के बीच चल रही रस्साकसी का परिणाम था। शास्त्री जी यूपी के कायस्थ थे। कायस्थ परिवार से आने वाले राजेंद्र प्रसाद के राष्ट्रपति पद से हटने के बाद कायस्थ लॉबी बौखलाई हुई थी।

मणि कायस्थ जाति के ब्राह्मणों के बौद्धिक जड़वाद से संघर्ष की कथा की बहुत ही मार्मिक व्याख्या करते हैं, जिसे किंचित विस्तार से उन्हीं के शब्दों में यहां दे देना ठीक होगा:

"कायस्थ जाति का ज्ञान पर कब्जा ब्राह्मणों की तरह ही है। किन्हीं क्षेत्रों में तो कुछ अधिक भी है। ...उत्तर भारत में कायस्थ जाति ने ब्राह्मणों की नागरी लिपि के समान्तर कैथी लिपि का प्रचलन किया। नागरी लिपि गैर-ब्राह्मण और स्त्रियां नहीं पढ़ सकते थे। कायस्थों ने गैर-ब्राह्मणों की सांस्कृतिक चेतना के विस्तार के लिए ही कैथी लिपि का अन्वेषण किया। इसी लिपि में आरंभ में भक्तिकाल के शूद्र कवियों की रचनाएं ग्रंथित हुईं। विवेकानंदी संप्रदाय के कायस्थों ने ब्राह्मणों के प्रभाव में आकर इस लिपि को नष्ट कर दिया। हमारे बिहार में 1949 में एक अध्यादेश निकाल कर कैथी लिपि को राजकाज के लिए प्रतिबंधित किया गया। यह कार्य शिवपूजन सहाय और बद्रीनाथ वर्मा जैसे हिन्दुत्व व्याकुल कायस्थों के माध्यम से ही कराया गया। मेरे दादा ने कैथी

लिपि के माध्यम से ही कक्षा पांच तक की शिक्षा ग्रहण की थी। वे अंग्रेजों के राज में साक्षर थे, आजाद भारत में वे निरक्षर हो गए। क्योंकि उनके अक्षर ही गैर-कानूनी हो गए। इसी प्रकार, कोलकाता जब आधुनिक शहर के रूप में उभरने लगा तो अंग्रेजी आधुनिकता से जुड़ने में कायस्थों और ब्राह्मणों का स्पर्धात्मक संघर्ष हुआ। जब ओरियंटलिज्म की ज्ञानात्मक और थियोसोफी की आध्यात्मिक चादर बिछी, तब इस पर कब्जा जमाने का भी संघर्ष हुआ। अंततः रामकृष्ण परमहंस (ब्राह्मण) और विवेकानंद (कायस्थ) की एकता ने संघर्ष विराम दिया। यह शैव और वैष्णवों के संघर्ष की समाप्ति की तरह था।...विवेकानंद ने रामकृष्ण को अपना गुरु माना रामकृष्ण ने विवेकानंद का प्रभाव स्वीकार किया। कायस्थों के सांस्कृतिकरण पर एक साधारण ही सही, ब्राह्मण की मुहर लगी। उन्हें द्विजत्व मिला। एवज में ब्राह्मणवादी द्विजवाद का विस्तार हुआ।"[3] (जोर हमारा)

यह सिर्फ एक बानगी है। जाति और वर्ण में डूबे भारतीय समाज और राजनीति के अतीत और वर्तमान को समझने के ऐसे अनेक सूत्र यह आत्मकथा उपलब्ध करवाती है। लेकिन जाति-वर्ण विमर्श मणि के चिंतन में सबसे अधिक जगह घेरने वाली चीज नहीं है, जैसा कि कुछ लोग कहते हैं। आत्मकथा से गुजरते हुए हम पाते हैं कि करुणा, व्यक्ति की आजादी और आत्मसम्मान उनके

---

[3] प्रेमकुमार मणि (2023), 'अकथ कहानी', वाणी प्रकाशन, दिल्ली, पृ. 36-37

व्यक्तित्व के सबसे गहरे आयाम हैं। उनका जाति-विमर्श भी इसी का एक हिस्सा है। वे हर उस व्यक्ति और समुदाय के पक्ष में करुण हैं, जो दमन का शिकार है। वास्तव में वे किसी विचार से अधिक महत्त्वपूर्ण संवेदना को मानते हैं, इसलिए किसी भी विचारधारा में कैद होने से आजीवन इंकार करते रहे। उनकी संवेदना का दायरा मनुष्यों तक ही सीमित नहीं है, बल्कि उनके पालतू खरगोश ब्राउन, घर के पंखे पर घोंसला बनाने वाली पंडुक, घर के सामने उगी जलकुंभियों में अंडे दे रहे काले-काले लंबे डैनों वाले जल-पक्षियों और मोहल्ले में अचानक आए गए घायल बंदर और इर्द-गिर्द के पेड़-गाछों तक फैला है।

2005 के बिहार विधान सभा चुनाव में प्रेमकुमार मणि ने नीतीश कुमार की पार्टी से कुर्था विधानसभा सीट से चुनाव लड़ा था। ठेठ मगध का वह इलाका नक्सलवाद से प्रभावित रहा है। 2000 के दशक में उसके इर्द-गिर्द के इलाकों में अनेक जाति आधारित नरसंहार हुए थे। चुनाव प्रचार के दौरान मणि अपने चुनाव क्षेत्र में स्थित सामंती जाति भूमिहारों के गांव सेनारी जाते हैं। इस गांव में 1999 में नक्सलवादियों ने एक साथ 38 भूमिहारों की गर्दन रेत दी थी। मणि बताते हैं कि *“सेनारी नरसंहार उन नरसंहारों का जवाब था, जो भूमिहारों की प्रतिनिधि कही जाने वाली रणवीर सेना की ओर से किया गया था और जिसमें दलित-पिछड़े समूहों के लोग सैकड़ों की संख्या में मारे गए थे।*[4]*”*

---

[4] प्रेमकुमार मणि (2023), ‘अकथ कहानी’, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, पृ. 287

मणि सेनारी पहुंचने पर ब्योरा देते हुए लिखते हैं कि *"मैं उस गांव में गया तो एक अजीब किस्म का सन्नाटा पसरा था। उस जगह पर गया, जहां लोगों की हत्या हुई थी। उस वक्त वहां थोड़े से गेंदे के छोटे-छोटे फूल खिले थे और हरी घास पसरी थी। हादसे के रोज उन सभी लोगों को बातचीत करने के लिए बुलाया गया था और फिर घेर कर हत्या कर दी गयी। जाति के हिसाब से ये लोग द्विज भूमिहार थे, लेकिन उनके घरों को देखा, तब वे आम अन्य लोगों के घरों की तरह ही थे। पूरे गांव में मुझे एक भी घर ऐसा नहीं दिखा, जिसे संपन्न कह सकें। मैंने उस भयावहता को याद किया और मेरी आंखें भर आयीं।[5]"*

भारत क्या है, और भारतीयता क्या है, यह सवाल मणि को शिद्दत से मथता है। अभी हाल ही में उन्होंने इस सवाल को केंद्र में रख कर एक किताब भी लिखी है, जो भारत के इतिहास के विभिन्न प्रसंगों पर नई दृष्टि डालती है। इन सवालों की जड़ें उनके बचपन में हैं। उनके माता-पिता प्रेम विवाह के बाद बिहार के नौबतपुर इलाके के एक गांव में रहने आ गए थे और अंतत: वहीं बस गए थे। उनकी मां की नियुक्ति वहां जिला बोर्ड द्वारा अनुदान प्राप्त एक स्कूल में शिक्षिका के रूप में हो गई थी। गांव के जमींदार के एक जीर्ण-शीर्ण पुराने

[5] प्रेमकुमार मणि (2023), 'अकथ कहानी', वाणी प्रकाशन, दिल्ली, पृ. 287

मकान में स्कूल चलता था। मणि के परिवार के पास अपना कोई घर नहीं था। वे उसी स्कूल भवन में रहते थे। उस गांव में उनके माता-पिता की भूमिका किसी स्थानीय व्यक्ति से कम नहीं थी। लेकिन वह उनका गांव नहीं था। वहां उनके सामने जन्म लेने वाले बच्चे भी उन्हें 'बाइली' (बाहरी) कहते थे।

सन् 2000 के आसपास जब सोनिया गांधी के प्रधानमंत्री बनने की चर्चा शुरू हुई तो उनके इटालियन मूल को लेकर तीखा विरोध किया गया। भारतीय जनता पार्टी के नेताओं के अतिरिक्त शरद पवार, पीए संगमा, जयललिता, मुलायम सिंह यादव आदि भी सोनिया के प्रधानमंत्री बनने के विरोध में बयान दे रहे थे। मणि नीतीश कुमार की पार्टी में थे, जो उस समय एनडीए का हिस्सा थी। उनकी पार्टी के नेता जार्ज फर्नांडिज भी इस मुद्दे पर कांग्रेस और सोनिया गांधी को घेर रहे थे।

उस समय मणि ने इस मुद्दे पर एक लेख लिखा था, जिसे राजेंद्र यादव ने हंस के संपादकीय के रूप में प्रकाशित किया था।

उस प्रसंग को याद करते हुए मणि लिखते हैं:

"मुझे बार-बार लगता है कि यह भारत किनका है? आर्यों का है? द्रविड़ों का है? मुगलों का है? हुणों का है? हिंदुओं का है? मुसलमानों का है? शूद्रों का है?

राजपूतों का देश कौन सा है? ब्राह्मणों का देश कौन सा है? भरत को स्वयं पता नहीं था, उसका पिता कौन है...हे जार्ज फर्नांडिस, हे मुलायम सिंह यादव, आप सबने अपने गुरु लोहिया से संस्कृति और इतिहास का यही पाठ पढ़ा है? सोनिया गांधी यदि एक इटालियन से भारतीय नहीं हो सकतीं, तो फिर एक शूद्र ज्ञान प्राप्त कर ब्राह्मण कैसे हो सकता है? यदि भारतीयता अर्जित नहीं की जा सकती, तो फिर ब्राह्मणत्व भी अर्जित नहीं किया जा सकता। कर्मफल इस जन्म में नहीं, अगले जन्म में मिलता है, यही तो ब्राह्मणवाद है।'[6] (जोर हमारा)

लेखन की दुनिया में मणि कम उम्र में ही आ गए थे। हाईस्कूल के दौरान ही उन्होंने पहली तुकबंदी लिखी और उसी दौरान उनका पहला लेख स्कूल की पत्रिका में प्रकाशित हुआ, जो मार्क्स की जीवनी पर आधारित था।

उनके पिता घर पर उस समय की चर्चित पत्रिकाएं मंगवाते थे। उस समय तक मणि अपने प्रयास से दर्जनों अन्य साहित्यिक-वैचारिक पुस्तकें भी पढ़ चुके थे।

सेकेंडरी बोर्ड की परीक्षाओं के बाद धनबाद के कोयला खदान में काम करने वाले उनके गांव के एक मजदूर ने उन्हें दो पुस्तकें दीं। ये पुस्तकें थी- चंद्रिका प्रसाद

[6] प्रेमकुमार मणि (2023), 'अकथ कहानी', वाणी प्रकाशन, दिल्ली, पृ. 56 और 261

जिज्ञासु के लखनऊ स्थित बहुजन कल्याण प्रकाशन द्वारा प्रकाशित डॉ. आम्बेडकर की किताब 'हू वेयर द शूद्राज' का हिंदी अनुवाद 'शूद्र कौन थे' और स्वयं जिज्ञासु जी द्वारा लिखित डॉ. आम्बेडकर की जीवनी। इन किताबों का उन पर गहरा असर हुआ।

इस बारे में वे बताते हैं:

"उसके पूर्व तक डॉ. आम्बेडकर का नाम मैंने नहीं सुना था। देश के जो कर्णधार थे, वे संकुचित मानसिकता के लोग थे, जातिवादी सोच थी उनकी। उन्होंने बिनोवा भावे, जयप्रकाश नारायण और राजेंद्र प्रसाद जैसे नेताओं के बारे में छात्रों को बहुत बतलाया था, लेकिन फुले, आम्बेडकर, पेरियार जैसे नेताओं को पूरी तरह दबा दिया गया था।...मैंने बहुत कठिनाई से पैसे इकट्ठे किए और बहुजन कल्याण माला, लखनऊ से तब तक प्रकाशित तमाम आम्बेडकर साहित्य डाक से मंगवाया।"

वस्तुत: प्रेमकुमार मणि के लेखन से परिचित लोग महसूस करते रहे हैं कि उनके चिंतन पर बुद्ध, मार्क्स, नेहरू और लोहिया का दार्शनिक प्रभाव है। हालांकि इस आत्मकथा में मणि बुद्ध, नेहरू और लोहिया की अनेक असंगत बातों की कटु आलोचना कर अपना पक्ष स्पष्ट कर देते हैं।

बहरहाल, उनकी आत्मकथा बताती है कि उपरोक्त चार लोगों के अतिरिक्त उनके जीवन को दिशा देने में भिक्षु जगदीश काश्यप और चंद्रिका प्रसाद जिसासु के बहुजन कल्याण प्रकाशन की महती भूमिका है।

भिक्षु जगदीश काश्यप बीसवीं सदी के भारत के बौद्ध त्रिरत्नों में से एक थे। दो अन्य रत्न राहुल सांकृत्यायन और भदंत आनंद कौसल्यायन को कहा जाता है। भिक्षु काश्यप कई भाषा और विषयों के ज्ञाता तथा नालंदा में स्थित नवनालंदा महाविहार के संस्थापक निदेशक थे। उनसे मणि का परिचय स्नातक की पढ़ाई के दौरान हुआ था। मणि ने उन्हें अपना गुरु स्वीकार किया है। भिक्षु काश्यप से निकटता और बौद्ध धर्म के प्रति आकर्षण और फिर उससे मोहभंग का वृतांत उन्होंने विस्तार से बताया है।

एक प्रसंग में मणि बताते हैं कि उन्होंने मनुस्मृति पर कुछ नोट्स लिखे थे, जिसे काश्यप जी ने बहुजन कल्याण प्रकाशन, लखनऊ को भिजवाया। यह छोटी सी ही सही, मणि की पहली प्रकाशित किताब (पुस्तिका) थी, जिसे ‘मनुस्मृति : एक प्रतिक्रिया’ शीर्षक से चंद्रिका प्रसाद जिज्ञासु ने प्रकाशित किया था।

दरअसल, चंद्रिका प्रसाद जिज्ञासु के बहुजन कल्याण प्रकाशन का जिन लेखकों पर प्रभाव पड़ा, उनमें सिर्फ प्रेमकुमार मणि अकेले नहीं हैं। दलित-पिछड़े समुदाय से आने वाले जिन हिंदी लेखकों का व्यक्तित्व और वैचारिकी 70 के

दशक में निर्मित हुई, उनमें बहुजन कल्याण प्रकाशन की कुछ न कुछ भूमिका अवश्य थी। ओमप्रकाश वाल्मीकि, कंवल भारती समेत अनेक लेखकों ने चंद्रिका प्रसाद जिज्ञासु के कार्यों का अपने विचारों पर पड़े निर्णायक प्रभाव को स्वीकार किया है। यह दुर्भाग्य ही है कि जिज्ञासु जी के हिंदी साहित्य के प्रभाव पर कोई अध्ययन नहीं हुआ।

कंवल भारती बताते हैं कि चंद्रिका प्रसाद जिज्ञासु का "सबसे बड़ा काम यह था कि उन्होंने दलितों और पिछड़ों को एक मंच पर लाने के लिए बहुजन अवधारणा दी। उस समय दलित शब्द प्रयोग में नहीं था। जिज्ञासु जी ने जान लिया था कि अछूतों और पिछड़ी जातियों का शत्रु एक ही है और वह है ब्राह्मणवाद।"[7] वस्तुत: प्रकारांतर से जिज्ञासु ही मौजूदा दलित साहित्य के भी जनक हैं। उनकी इस अवधारणा में जाति की जगह विचार प्रमुख था।

मणि भी *'जयप्रकाश आंदोलन और आपातकाल' शीर्षक अध्याय में बताते हैं कि "उस समय हमने एक छात्र संगठन बनाया हुआ था, दलित छात्र संघ के नाम से। दलित शब्द आज जैसे अनुसूचित जाति के लिए रूढ़ हो गया है, वैसे तब नहीं था।...हमारा दलित तब बहुजन के अर्थ में था।[8]"*

---

[7] कंवल भारती (2016), 'बहुजन चेतना के नायक चंद्रिका प्रसाद जिज्ञासु', प्रमोद रंजन (संपादक), हिंदी साहित्येतिहास का बहुजन पक्ष, अनन्य प्रकाशन, दिल्ली, पृ. 112

[8] प्रेमकुमार मणि (2023), 'अकथ कहानी', वाणी प्रकाशन, दिल्ली, पृ. 125

लेकिन, 1990 के दशक में यह बहुजन अवधारणा कई कारणों से हाशिए पर चली गई।

स्नातक की पढ़ाई पूरी करने से पहले मणि के लेख दिनमान व उस समय की अन्य प्रतिष्ठित पत्रिकाओं में न सिर्फ प्रकाशित हो चुके थे, बल्कि कुछ लेखों पर अच्छा-खासा विमर्श और विवाद हुआ था। एक लेखक के रूप में उनकी पहचान उस समय से ही बनने लगी थी। साहित्य तथा राजनीति दोनों क्षेत्र के अनेक लोग उनको जानने लगे थे। उन्होंने साहित्य की दुनिया का वह दौर भी देखा, जब लोकप्रिय पत्रिकाओं में एक लेख या कहानी के प्रकाशन से तीन-तीन सौ चिट्ठियां आती थीं और लेखक को समाज में अच्छे-खासे सम्मान से देखा जाता था। और वह दौर भी, जब साहित्य की दुनिया निरंतर संकुचित होती गई और साहित्य और लेखक दोनों हाशिये पर खिसकते गए।

वे बताते हैं कि

"जब मार्क्सवाद और जनवाद का बुखार उतरा तब कुछ सार्थक विमर्श भी हुए, जैसे स्त्री और दलित विमर्श। लेकिन इसे भी दिग्भ्रमित करने की पूरी कोशिश की गई। सवर्ण आलोचकों की सोच थी कि दलित साहित्य उन लेखकों द्वारा लिखा गया साहित्य है, जो अनुसूचित जातियों में पैदा हुए हैं। वे इनके वैचारिक

आधार फुले-आम्बेडकरवाद के बारे में कुछ भी नहीं जानते थे। उन्होंने दलित साहित्य के अस्तित्व को स्वीकार अवश्य किया। लेकिन वैसे ही जैसे गांव का सवर्ण दलित बस्ती के अस्तित्व को स्वीकार करता है। इससे भी ज्यादा अनिष्ट उन लेखकों ने किया जो अनुसूचित जातियों से आते थे और उससे बाहर नहीं निकलना चाहते थे। उन्होंने दलित साहित्य को एक बाड़े से जबरदस्त रूप से घेर दिया और अपनी पताका फहरा दी। अपने इस सांस्कृतिक साम्राज्य को अभेद्य बनाने के चक्कर में एक दलित सांप्रदायिकता और दलित ब्राह्मणवाद को अनजाने में जन्म दे दिया। समानता, मानवता और करुणा के उसके महान उद्देश्य नष्ट हो गए और बच गया केवल अपना जातिवाद। जल्दी ही दलित साहित्य अनुसूचित जाति साहित्य में बदल गया।... आरंभ में दलित विमर्श ने साहित्य पर चिंतन का एक भिन्न दृष्टिकोण दिया और यह मुझे अच्छा भी लगा, लेकिन जल्दी ही ये अपने मित्रों पर ही हमले करने लगे। मसलन, दलित लेखकों ने तुलसी के साहित्य पर कोई प्रभावशाली विमर्श नहीं किया, लेकिन प्रेमचंद पर हमले खूब किए।"[9]

मणि मानते हैं कि "केवल दलित जीवन का चित्रण दलित साहित्य का ध्येय नहीं होना चाहिए। उन्हें पूरे समाज को अपने नजरिए से देखना चाहिए।... दलितों के जीवन लिखना नहीं, दलितों के नजरिए से जीवन और साहित्य को

---

[9] प्रेमकुमार मणि (2023), 'अकथ कहानी', वाणी प्रकाशन, दिल्ली, पृ. 222-223

देखना और लिखना दलित लेखन, दलित साहित्य है।"[10]

कमोबेश यही नजरिया चंद्रिका प्रसाद जिज्ञासु का भी था।

मणि विज्ञान के विद्यार्थी रहे। स्नातक की पढ़ाई के दौरान बॉटनी, जूलॉजी, और कैमेस्ट्री उनके विषय थे। विज्ञान में उनकी अभिरुचि बचपन से ही थी। 'चंदा मामा' जैसी पत्रिकाएं पढ़ने की उम्र में ही उन्होंने सोवियत संघ द्वारा अंतरिक्ष में भेजे गए स्पुतनिक और लाइका (कुतिया) की तस्वीर घर की दीवार पर चिपका दी थी। आत्मकथा में एक अध्याय का शीर्षक है- 'मनुष्य के कदम चांद पर'।

यह अध्याय ध्यान दिलाता है कि 70 के दशक में दूर-दराज के गांवों में भी आम लोगों की कितनी पैनी नजर विज्ञान और तकनीक के विकास पर थी।

20 जुलाई, 1969 को अमेरिका के नासा ने घोषणा की कि नील आर्मस्ट्रांग और एडविन बज एल्ड्रिन ने चांद पर अपने कदम रख दिए हैं। इसका आंखों देखा हाल रेडियो पर प्रसारित हुआ था। वह प्रसारण अंग्रेजी भाषा में था, जिसे गांव के अधिकांश लोग नहीं समझते थे।

---

[10] प्रेमकुमार मणि (2023), 'अकथ कहानी', वाणी प्रकाशन, दिल्ली, पृ. 225

मणि लिखते हैं:

"आज कोई सोच सकता है कि उस जमाने में और गांव में मनुष्य जाति की सक्रियता की भला क्या चर्चा होगी। लेकिन नहीं, मैं याद कर सकता हूं कि हमारा गांव-कस्बा इसे लेकर खूब उत्सुक था और बाज लोगों की इस पर दिलचस्प प्रतिक्रिया थी।...हमारे गांव के बाजार पर देर रात (प्रसारण सुनने के लिए) इतने अधिक लोगों को इकट्ठा मैंने कभी नहीं देखा था। वह भी एक एक ऐसी चीज की उत्सुकता लिए, जो न उनके रोजमर्रा या अपने जीवन से जुड़ी कोई चीज थी, न ही उनके गांव, समाज या देश से जुड़ी। यह पूरी भीड़ और उत्सुकता मानव समाज की एकता को समर्पित थी और सुदूर इस गांव में हम कह सकते हैं कि मानव जाति की एकता का उत्सव जैसा था।... जब एक बार ठक जैसी कोई आवाज हुई और यह बतलाया गया कि नील ने अपने कदम चांद की धरती पर रख दिए हैं। तब लोगों की तालियां जोरों से बज उठीं। खूब मिठाइयां बंटी और लोगों की खुशी का तो कोई ठिकाना ही नहीं था।"[11]

इस विवरण से आज की स्थितियों का ध्यान आता है। पिछले कुछ वर्षों में तकनीक का विस्फोट सा हुआ है। आर्टिफिशियल इंटलीजेंस, रोबोटिक्स और

[11] प्रेमकुमार मणि (2023), 'अकथ कहानी', वाणी प्रकाशन, दिल्ली, पृ. 62

जेनेटिक्स में इतना विकास हुआ है कि मनुष्य की इयत्ता खतरे में पड़ गई है। सबसे चिंताजनक है कि इस तकनीकी विकास पर किसी लोकतांत्रिक राष्ट्र-राज्य का अधिपत्य नहीं है। विशाल कॉरपोरेशन इसके मालिक हैं, वे ही इनकी दिशा तय कर रहे हैं। जाहिर है, वे इसे सिर्फ और सिर्फ उस दिशा में बढ़ा रहे हैं, जिससे उन्हें अधिकाधिक मुनाफा होने की उम्मीद है। यह मानव जाति समेत पूरी पृथ्वी के लिए खतरे की घंटी है।

लेकिन, आज गांवों में तो दूर, शहरों के बुद्धिजीवियों, लेखकों, राजनीतिक दलों में इन विषयों पर कोई चर्चा, कोई विमर्श नहीं है। जबकि इसका प्रभाव हमारे समाज, साहित्य और राजनीति पर साफ दिखने लगा है।

मसलन, यह साल - 2024 दुनिया के इतिहास में सबसे महत्त्वपूर्ण चुनावी साल है। विश्व स्तर पर, कभी भी इतने अधिक मतदाताओं ने एक साल में मतदान नहीं किया है। इस साल 64 देशों (साथ ही यूरोपीय संघ) में राष्ट्रीय चुनाव होने वाले हैं। संख्या के हिसाब से दुनिया की लगभग आधी व्यस्क आबादी इस साल मतदान में भाग लेगी। इनमें भारत, संयुक्त राज्य अमेरिका, रूस, इंग्लैंड, दक्षिण अफ्रीका आदि देश शामिल हैं। भारत के पड़ोसी देश, बांग्लादेश, पाकिस्तान, श्रीलंका, भूटान में भी इसी साल चुनाव होने हैं।[12]

[12] कोह ईवे (2023), ‘ द अल्टीमेट इलेक्शन इयर: ऑल द इलेक्शन्स अराउंड द वर्ल्ड इन 2024’, The Ultimate ’, द टाइम, 28 दिसंबर. 2023, https://time.com/6550920/world-elections-2024/, 26 जनवरी, 2024 को देखा गया.

इन चुनावों में दुनिया भर में तकनीकी कंपनियों द्वारा निर्मित आर्टिफिशियल इंटलीजेंस का बोलबाला होगा। जिसका सीधा फायदा प्रतिक्रियावादी और तानाशाही प्रवृत्ति वाली राजनीतिक धाराओं को मिलने की आशंका है।

पिछले कुछ वर्षों में इन कंपनियों के पास विश्व के अधिकांश नागरिकों से संबंधित अकूत आंकड़े हैं। हमारी रुचियों, अरुचियों, आदतों, विचारों, चेतन और अचेतन मन - सब के पल-पल का ब्योरा उनके पास है। राजनीतिक पार्टियां इन तकनीकी कपंनियों से समझौता कर रही हैं, ताकि मतदाताओं की माइक्रो-टारगेटिंग की जा सके। माइक्रो-टारगेट करना यानी, हर मतदाता को उसकी रुचि की ऐसी झूठी-सच्ची चीजें दिखाना जो उसे सेवा खरीदने वाले दल के पक्ष में वाेट करने के लिए तैयार कर दे। यह वोटिंग मशीन को हैक करने की जगह मतदाता के मस्तिष्क को हैक करना है। भारत में भारतीय जनता पार्टी तकनीकी कंपनियों से मिलकर पिछले चुनावों में भी इसका सफल प्रयोग कर चुकी है। मेटा (पहले फेसबुक) से उसके समझौते की खबरें पिछले कई सालों से हवा में है।[13] विशालकाय तकनीकी कंपनियां ‘चुनावी सलाहकार संस्था’ का बाना पहन कर इस धंधे में उतर आईं हैं। इस बीच यह तकनीक और भी विकसित हो चुकी है और भारत समेत दुनिया भर में चुनावों के मद्देनजर इसका जमकर

[13] बिली पेरिगो, ‘फेसबुक्स टाइज टू इंडियाज रूलिंग पार्टी कांपलीकेट इटस फाइट अगेंस्ट हेट स्पीच’ 27 अगस्त, 2020,https://time.com/5883993/india-facebook-hate-speech-bjp/,26 जनवरी, 2024 को देखा गया.

उपयोग हो रहा है। लेकिन इन चीजों पर कहीं कोई चर्चा दिखती है?

प्रेमकुमार मणि की आत्मकथा के उपरोक्त प्रसंग में एक और रेखांकित करने वाली बात है गांव के एक कम्युनिस्ट कार्यकर्ता द्वारा चांद पर मनुष्य के कदम पड़ने की घटना पर संदेह व्यक्त करना।

गांव के एक कम्युनिस्ट कार्यकर्ता लाल बिहारी रेडियो प्रसारण ध्यान से सुन रहे थे। मणि लिखते हैं कि *"उनका कहना था कि यह अमेरिका की सीआईए का खेल है। उनके बयान का आखिरी हिस्सा साईंस से जुड़ा था। उन्होंने कहा- 'यह ठक की आवाज कैसे हुई? इतना साईंस तो मैं भी जानता हूं। जब चांद पर हवा नहीं, तब यह आवाज कैसे हुई? जाल फरेब है सब, जाल फरेब।"*[14]

वस्तुत: बाद के वर्षों में यह चर्चा तेज हुई कि क्या 1969 में सचमुच मनुष्य ने चांद पर अपने कदम रखे थे? आज भी अनेकानेक वैज्ञानिकों का मानना है कि उस समय इतनी उन्नत तकनीक उपलब्ध ही नहीं थी कि आदमी को चांद पर भेजा जा सके। अध्येताओं का कहना है कि वह सिर्फ कैमरे का कमाल था, और सारा खेल सीआईए के दफ्तर से संचालित किया गया था, ताकि दुनिया के

[14] प्रेमकुमार मणि (2023), 'अकथ कहानी', वाणी प्रकाशन, दिल्ली, पृ. 62

सामने रूस पर भावात्मक बढ़त हासिल की जा सके।[15] नील आर्मस्ट्रांग और एडविन बज एल्ड्रिन ने भी चांद से लौटने के बाद प्रेस से कभी भी इस बारे में साफ बात नहीं की। वे हमेशा इस सवाल से बचते रहे। हालांकि इस दावे को फर्जी को बताने के लिए अमेरिकन संस्थानों ने जबदस्त अभियान चलाया और सवाल उठने वालों की विश्वसनीयता को संदिग्ध बनाने के लिए इसे 'हॉक्स' कर प्रचारित किया।

बहरहाल, सवाल यह नहीं है कि 1969 में मनुष्य चांद पर गया या नहीं। सवाल यह है कि उस समय मनुष्यता को प्रभावित करने वाली तकनीक के विकास पर न सिर्फ लोगों की नजर थी, बल्कि वे उनके दावों को जस का तस स्वीकार करने को तैयार नहीं थे। यह विज्ञान और तकनीक के विकास की दिशा पर एक किस्म की स्वत:स्फूर्त जन-निगरानी थी। लेकिन, आज तकनीक का यह विस्फोट हमारे सामाजिक-राजनीतिक विमर्श से भी बाहर है। मणि समाज की मानसिकता में बढ़ती ऐसी विचारहीनता और क्षुद्र स्वार्थवृत्ति को चिन्हित करते हैं।

वस्तुतः मणि जिसे किसान चेतना की वैज्ञानिकता कहते हैं, वह इन वर्षों में खो गई है। किताबों पर अतिशय निर्भरता वाली शिक्षा की मौजूदा प्रणाली ने लोगों

[15] बिल केसिंग (2002) [1976], 'वी नेवर वेंट टू द मून: अमेरिकाज थर्टी बिलियन डॉलर स्विंडल", हेल्थ रिसर्च बुक्स, वाशिंगटन.

को बौद्धिक परजीवी बनाया। शिक्षा का विकास जिस प्रायोजित ढंग से हुआ, उसने हमें प्रखर नहीं बनाया बल्कि हमारी नैसर्गिक तार्किकता और विवेक को कुंद ही किया।

जैसा कि पहले उल्लेख हुआ कि मणि ने यह आत्मकथा वर्ष 2013 में पूरी कर ली थी। यानी, यह नरेंद्र मोदी के प्रधानमंत्री बनने से पहले लिखी जा चुकी थी। 2014 के लोकसभा चुनाव में भारतीय जनता पार्टी को भारी बहुमत मिला और नरेंद्र मोदी प्रधानमंत्री बने। पिछले दस सालों में तर्क, विवेक, सामाजिक सौहार्द की बात करने वाले अनेकनेक बुद्धिजीवी, सामाजिक कार्यकर्ता जेल भेजे जा चुके हैं। देश में राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के उग्र हिंदुत्व का बोलबाला है, जिसके प्रतिरोध की कोई प्रभावशाली, विश्वसनीय राजनीतिक आवाज नहीं है। नरेंद्र मोदी की छवि एक सुपर मैन के रूप में प्रसारित की जा रही है। भारतीय मीडिया के कैमरे सिर्फ प्रधानमंत्री के इर्द-गिर्द घूमते हैं। स्वयं मोदी और उनकी पार्टी की दूसरी पंक्ति के नेताओं की हिंसक वाचालता से पूरे देश में भय का माहौल है।

मणि की आत्मकथा के कई प्रसंग ऐसे हैं, जो मानो इस स्थिति की भविष्यवाणी करते प्रतीत होते हैं। इस क्रम में वे तिलकवाद से हिंदू महासभा, राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ और भाजपा तक के विकास के दौरान इनकी विचारधारा व कार्यप्रणाली में आए बदलाव चिन्हित करते हैं और मार्क्सवादी, समाजवादी और

कांग्रेसी धारा के नखदंत विहिन होते जाने के कारणों को रेखांकित करते हैं।

इस क्रम में वे भारत की आम जनता के राजनीतिक विवेक पर तो भरोसा दिखाते हैं, लेकिन मध्यम वर्ग की बुजदिली से मर्माहत होते हैं। एक जगह वे लिखते हैं कि “हमारे जन मन में हमेशा एक कड़क प्रधानमंत्री की अभिलाषा रहती है।”

एक जगह वे एक कहानी कहते हैं, जो इस प्रकार है:

“चीनी दार्शनिक कन्फूशियस से एक बार एक नौजवान ने सवाल किया था कि सबसे अच्छे राजा कौन होते हैं? कन्फूशियस का जबाव था - ‘वे जिनके बारे में जनता केवल यह जानती है कि वह जीवित हैं और राज कर रहे हैं।’
‘और सबसे बुरे राजा?’ नौजवान का पूरक सवाल था।
‘वे जिनके हर कार्य के बारे में जनता विस्तार से जानती है और जिनकी दिन रात चर्चा होती रहती है।’

जाहिर है, बुरे राजा का यह दुर्गुण हमारे मौजूदा प्रधानमंत्री की कार्यप्रणाली में कूट-कूट कर भरा है, जिसे आज हर कोई महसूस कर रहा है।

वस्तुत: मणि की आत्मकथा भारत की वैचारिकता, राजनीतिक व साहित्यिक

हलचलों और आंदोलनों का इतिहास है, साथ ही यह पिछले कुछ दशकों में बढ़ी विचारहीनता, लंपटता और क्षुद्र स्वार्थों के हावी होते जाने की पीड़ा का बयान भी है। यह हमारे अतीत की ऐसी कथा है, जिसके माध्यम से वर्तमान और भविष्य को भी देखा जा सकता है।

पुस्तक: अकथ कहानी (आत्मकथा)

लेखक: प्रेमकुमार मणि

प्रकाशक: वाणी प्रकाशन, दिल्ली

पृष्ठ संख्या: 368

मूल्य: 499 रुपए (पेपर बैक)

संपर्क: प्रमोद रंजन, हिंदी विभाग, असम विश्वविद्यालय, दीफू, पिन: 782462.

मोबाइल: 9811884495